प्रकाशन तिथि : 26 जुलाई 2018, मूल्य 2 रुपये, वर्ष 37, अंक 1, कुल पृष्ठ 36

ISSN 2454 - 5163

वीतराग-विज्ञान

(पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट का मुखपत्र)

सम्पादक :
डॉ. हुकमचंद भारिल्ल

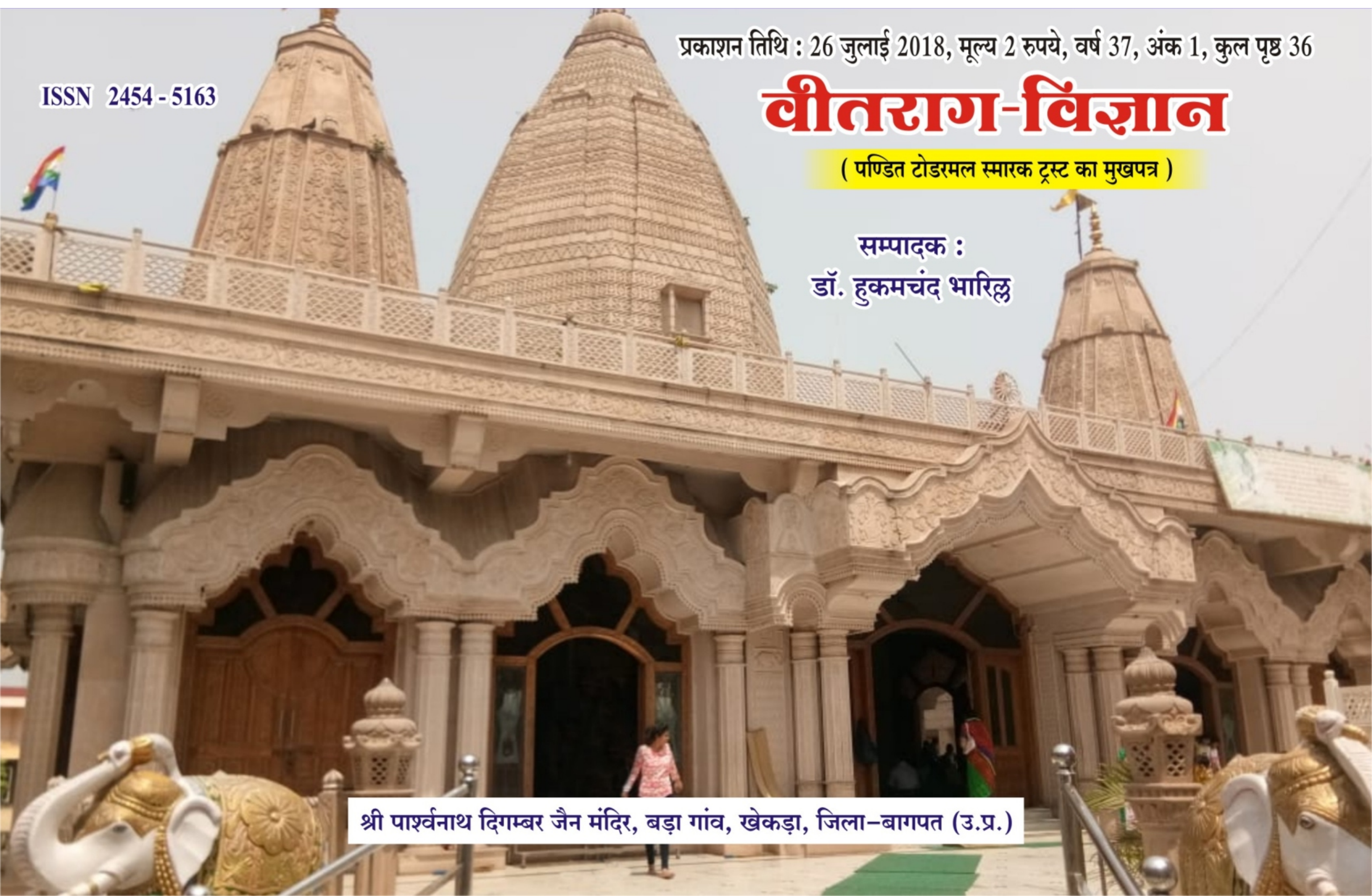

श्री पार्श्वनाथ दिगम्बर जैन मंदिर, बड़ा गांव, खेकड़ा, जिला–बागपत (उ.प्र.)

वीतराग–विज्ञान (420)

हिन्दी, मराठी व कन्नड़ भाषा में प्रकाशित

जैनसमाज का सर्वाधिक बिक्रीवाला आध्यात्मिक मासिक

सम्पादक :
डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल
सह-सम्पादक :
डॉ. संजीवकुमार गोधा
प्रकाशक एवं मुद्रक :
ब्र. यशपाल जैन द्वारा पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट के लिये जयपुर प्रिण्टर्स प्रा. लि., जयपुर से मुद्रित एवं प्रकाशित।

सम्पर्क-सूत्र :
पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट
ए-4, बापूनगर, जयपुर – 302015
फोन :(0141)2705581, 2707458
E-mail : ptstjaipur@yahoo.com

ISSN 2454 - 5163

शुल्क :

आजीवन :	251 रुपये
वार्षिक :	25 रुपये
एक प्रति :	2 रुपये

मुद्रण संख्या :

हिन्दी :	7200
मराठी :	2000
कन्नड़ :	1000
कुल :	10200

भेदज्ञान से ही धर्म है

राग होने पर भी मैं राग जितना तुच्छ–पामर नहीं हूँ; किन्तु मैं तो प्रभुत्व शक्ति से परिपूर्ण हूँ – इसप्रकार राग का उल्लंघन करके अपनी प्रभुता का स्वीकार करना सो अपूर्व पुरुषार्थ है। अपनी प्रभुता को भूलकर जीव संसार में भटका है और अपनी प्रभुता की सम्हाल करने से जीव स्वयं परमात्मा हो जाता है। जब तक देह से और राग से पार आत्मा की प्रभुता को अपूर्व प्रयत्न द्वारा न पहिचाने तब तक भेदज्ञान–सम्यग्ज्ञान नहीं होता और सम्यग्ज्ञान के बिना अज्ञानी को धर्म कैसा? इसलिये जिसे वास्तव में धर्म करना हो–धर्मी होना हो उसे अपूर्व उद्यम करके अपने आत्मस्वभाव की पहिचान से भेदज्ञान करना चाहिये। भेदज्ञानी जीव अपने स्वभाव के आश्रय से निर्मल पर्यायरूप परिणमित होकर उसी का कर्ता होता है और विकार का कर्ता नहीं होता – इसका नाम धर्म है।

– आत्मप्रसिद्धि, पृष्ठ 519–520

वीतराग–विज्ञान

वीतराग–विज्ञान ही, तीन लोक में सार।
वीतराग–विज्ञान का , घर–घर होय प्रसार ।।

वर्ष : 37 (वीर नि. संवत् – 2544) 420 अंक : 1

सत्ता रंगभूमि में....

सत्ता रंगभूमि में, नटत ब्रह्म नटराय ।। टेक ।।

रत्नत्रय आभूषण मण्डित, शोभा अगम अथाय।
सहज सखा नि:शंकादिक गुन, अतुल समाज बढ़ाय ।।
सत्ता रंगभूमि में ....।।1 ।।

समता वीन मधुररस बोलै, ध्यान मृदंग बजाय।
नदत निर्जरा नाद अनूपम, नूपुर संवर ल्याय ।।
सत्ता रंगभूमि में....।।2 ।।

लय निज–रूप मगनता ल्यावत, नृत्य सुज्ञान कराय।
समरस गीतालापन पुनि जो, दुर्लभ जगमहँ आय ।।
सत्ता रंगभूमि में....।।3 ।।

भागचंद आपहि रीझत तहाँ, परम समाधि लगाय।
तहाँ कृत–कृत्य सु होत मोक्षनिधि, अतुल इनामहिं पाय ।।
सत्ता रंगभूमि में....।।4 ।।

– कविवर पण्डित भागचन्दजी

पण्डित टोडरमल सर्वोदय ट्रस्ट, जयपुर द्वारा
ज्ञानतीर्थ श्री टोडरमल स्मारक भवन जयपुर में

41वाँ आध्यात्मिक शिक्षण-शिविर

(रविवार, दिनांक 12 अगस्त से मंगलवार 21 अगस्त, 2018 तक)

प्रतिवर्ष की भांति इस वर्ष भी पण्डित टोडरमल दिगम्बर जैन सिद्धांत महाविद्यालय का **41वाँ शिक्षण शिविर पण्डित टोडरमल स्मारक भवन, जयपुर में दिनांक 12 अगस्त से 21 अगस्त,** 2018 तक लगने जा रहा है।

शिविर में तत्त्ववेत्ता डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल एवं अन्य अनेक विद्वानों के प्रवचनों एवं कक्षाओं का लाभ प्राप्त होगा।

शिविर में जयपुर आने हेतु अपने टिकिट शीघ्र करा लेवें। कृपया आवास आदि की समुचित व्यवस्था हेतु अपने पधारने की पूर्व सूचना जयपुर कार्यालय को अवश्य भेजें।

संपर्क सूत्र – पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट, ए-4, बापूनगर, जयपुर 302015 (राज.)
फोन : 0141-2705581, 2707458

विशेष ध्यान दें! – यह शिविर उपरोक्त तिथियों में जयपुर में संपन्न होना निश्चित है, अत: कोई भी किसी भी प्रकार के भ्रम में न रहे!

डॉ. भारिल्ल के आगामी कार्यक्रम

28 व 29 जुलाई	दिल्ली (शाह ऑडिटोरियम)	वीरशासन जयन्ती
12 से 21 अगस्त	जयपुर	महाविद्यालय शिविर
6 से 13 सितम्बर	अध्यात्म स्टडी सर्किल-मुम्बई	श्वेताम्बर पर्यूषण
14 से 25 सितम्बर	बेलगांव (कर्नाटक)	दशलक्षण महापर्व
5 से 12 अक्टूबर	जयपुर	शिक्षण शिविर
16 से 21 अक्टूबर	पोन्नूर	तमिलनाडु यात्रा

पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के समस्त ऑडियो – वीडियो प्रवचन साहित्य एवं अन्य अनेक जानकारियों के लिये अवश्य देखें –
वेबसाईट – www.vitragvani.com
संपर्क सूत्र – श्री कुन्दकुन्द कहान पारमार्थिक ट्रस्ट, मुम्बई
Ph.: 022-26130820, 26104912, E-Mail- info@vitragvani.com
ये सभी प्रवचन सामग्री अब vitragvani एप पर भी उपलब्ध है।

सम्पादकीय

कुन्दकुन्द शतक अनुशीलन

(गतांक से आगे ...)

मोह और क्षोभ से रहित आत्म परिणाम धर्म है

(६९)

चारित्तं खलु धम्मो धम्मो जो सो समो त्ति णिद्दिट्ठो।
मोहक्खोहविहीणो परिणामो अप्पणो हु समो।।

(हरिगीत)

चारित्र ही बस धर्म है वह धर्म समताभाव है।
दृगमोह-क्षोभ विहीन निज परिणाम समताभाव है।।

वास्तव में तो चारित्र ही धर्म है। यह धर्म साम्यभाव रूप है तथा मोह (मिथ्यात्व) और क्षोभ (राग-द्वेष) से रहित आत्मा का परिणाम ही साम्य है – ऐसा कहा गया है। तात्पर्य यह है कि **सम्यग्दर्शन सहित चारित्र ही वास्तव में धर्म है।**

यह गाथा प्रवचनसार नामक शास्त्र की ७ वीं गाथा है। चारित्र को धर्म घोषित करनेवाली उक्त गाथा सर्वाधिक चर्चित गाथा है। इसमें साफ-साफ लिखा है कि न तो जड़ देह की क्रिया का नाम चारित्र है और न शुभभावरूप रागभाव का नाम ही निश्चय चारित्र है। **चारित्र तो मोह-क्षोभ से रहित आत्मपरिणाम का नाम है; जो मिथ्यात्व और राग-द्वेष से रहित वीतरागी परिणाम है।**

इस गाथा का भाव तत्त्वप्रदीपिका टीका में आचार्य अमृतचन्द्र इसप्रकार स्पष्ट करते हैं –

"स्वरूप में चरण करना (रमना) चारित्र है। इसका अर्थ (तात्पर्य) स्वसमय में प्रवृत्ति करना है। वस्तु का स्वभाव होने से यही धर्म है और शुद्धचैतन्य का

प्रकाशन होना – इसका अर्थ है। यही यथावस्थित आत्मगुण होने से साम्य है। वह साम्य दर्शनमोहनीय तथा चारित्रमोहनीय के उदय से उत्पन्न होनेवाले समस्त मोह (दर्शनमोह-मिथ्यात्व) और क्षोभ (चारित्रमोह – राग-द्वेष) के अभाव के कारण अत्यन्त निर्विकारी – ऐसा जीव का परिणाम है।''

यह सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण गाथा और उसकी सरल-सुबोध छोटी-सी टीका – इसमें आचार्यदेव ने समस्त जिनागम का सार भर दिया है।

सम्यक्चारित्र सम्यग्दर्शन-ज्ञानपूर्वक होता है। स्वरूप में अपनापन **सम्यग्दर्शन** व स्वरूप को जानना, निजरूप जानना – **सम्यग्ज्ञान** है और उसी स्वरूप को जानकर-मानकर, उसी में **स्थिर हो जाना चारित्र** है।

इसी को स्वसमय में प्रवृत्ति कहते हैं। यही शुद्धचैतन्य का प्रकाशन है; यही वस्तु का स्वभाव होने से धर्म है। इसी का नाम साम्यभाव है।

पर्याय में प्रगट हुआ-जीव का यही साम्यभाव साक्षात् चारित्र है, धर्म है।

धर्म से परिणत आत्मा

(७०)

धम्मेण परिणदप्पा अप्पा जदि सुद्धसंपयोगजुदो।
पावदि णिव्वाणसुहं सुहोवजुत्तो य सग्गसुहं।।

(हरिगीत)

प्राप्त करते मोक्षसुख शुद्धोपयोगी आतमा।
पर प्राप्त करते स्वर्गसुख हि शुभोपयोगी आतमा।।

धर्म से परिणमित स्वभाववाला आत्मा यदि शुद्धोपयोग में युक्त हो तो मोक्षसुख को प्राप्त करता है और यदि शुभोपयोग में युक्त हो तो स्वर्गसुख को प्राप्त करता है।

यह गाथा प्रवचनसार नामक शास्त्र की ११वीं गाथा है। इसमें यह बताया गया है कि धर्म से परिणत आत्मा अर्थात् **वीतराग परिणति से परिणत, शुद्ध परिणति से परिणत आत्मा जब शुद्धोपयोग से युक्त होता है तो मोक्ष सुख पाता**

है और जब शुभोपयोगयुक्त होता है तो स्वर्ग सुख पाता है।

ध्यान देने की बात यह है कि जब यह आत्मा; मिथ्यात्व, अनंतानुबंधी व अप्रत्याख्यानावरण कषाय चौकड़ी अथवा मिथ्यात्व, अनंतानुबंधी, अप्रत्याख्यानावरण व प्रत्याख्यानावरण कषाय चौकड़ी के अभाव में होनेवाली शुद्धपरिणति से युक्त होता है; तब वह शुद्ध परिणति सम्पन्न शुद्धात्मा शुद्धोपयोग से मुक्ति प्राप्त करता है और शुभोपयोग से स्वर्गसुख प्राप्त करता है।

तात्पर्य यह है कि शुद्धोपयोग मोक्षसुख का एवं शुभोपयोग स्वर्ग सुख का कारण है; परन्तु दोनों में ही साथ में शुद्धपरिणति का होना अनिवार्य है; क्योंकि शुद्धपरिणति के बिना शुद्धोपयोग और शुभोपयोग होते ही नहीं हैं।

शुद्धपरिणति का सहचारी होने से ही शुभोपयोग को व्यवहार धर्म कहा जाता है या व्यवहारनय से धर्म कहा जाता है।

असली धर्म तो शुद्धपरिणति और शुद्धोपयोग ही हैं।

मूल गाथा में '**धम्मेण परिणदप्पा अप्पा**' पद आया है। उसका अर्थ ही शुद्धपरिणति से परिणत आत्मा होता है।

आज तो धर्मक्षेत्र में रहनेवाले अधिकांश लोग भी शुभाशुभ से आगे नहीं बढ़ते, तीव्र-मंद से आगे नहीं बढ़ते, पुण्य-पाप से नहीं बढ़ते। उनकी सारी तत्त्वचर्चा और सारा धर्म इन्हीं में समाहित होकर रह गया है।

शुद्धोपयोग की चर्चा आजकल कुछ होने भी लगी है, पर शुद्ध परिणति की तो कोई बात ही नहीं करता। जबकि सर्वाधिक महिमा शुद्धपरिणति की है।

बंध, अबंध और बंधव्युच्छित्ति का नियमन परिणति के अनुसार ही होता है। उपयोग तो कभी-कभी होता है; पर परिणति सदा रहती है।

छठवें गुणस्थान में शुभोपयोग रहता है, सातवें में शुद्धोपयोग रहता है; किन्तु शुद्धपरिणति छठवें में भी है, सातवें में भी है – दोनों में है।

परिणति का स्वरूप स्पष्ट करते हुए कविवर पण्डित भागचंदजी छाजेड़ लिखते हैं –

परनति सब जीवन की, तीन भाँति वरनी।
एक पुण्य एक पाप, एक राग-हरनी ।।टेक।।
तामें शुभ-अशुभ अंध, दोय करैं कर्मबंध।
वीतराग परनति ही, भव-समुद्र तरनी ।।१।।
जावत शुद्धोपयोग, पावत नाहीं मनोग।
तावत ही करन जोग, कही पुण्य करनी ।।२।।
त्याग शुभ क्रियाकलाप, करो मत कदाच पाप।
शुभ में न मगन होय, न शुद्धता विसरनी ।।३।।
ऊँच-ऊँच दशा धारि, चित्त प्रमाद को विडारि।
ऊँचली दशातैं मति, गिरो अधो धरनी ।।४।।
भागचंद या प्रकार, जीव लहै सुख अपार।
याके निरधार स्यादवाद की उचरनी ।।५।।

सभी जीवों की परिणति तीन प्रकार की कही गई है। एक पुण्य (शुभ) परिणति, दूसरी पाप (अशुभ) परिणति और तीसरी राग-द्वेष का हरण करनेवाली वीतराग-परिणति।

उक्त तीनों परिणतियों में शुभ परिणति और अशुभ परिणति तो अंधी हैं, अज्ञानमयी हैं। उक्त दोनों परिणतियाँ कर्मबंध करनेवाली हैं। मात्र एक वीतराग परिणति ही संसार समुद्र से पार उतारनेवाली है ।।१।।

जबतक अति मनोग्य शुद्धोपयोग प्राप्त नहीं होता, तबतक शुभभाव रूप पुण्यकरणी करनेयोग्य है – ऐसा शास्त्रों में कहा गया है ।।२।।

इसलिए पाप तो कभी करो ही नहीं, शुभ क्रियाकलाप को भी त्याग दो। शुभभाव हों तो हों पर शुभभावों में मगन मत हो जाना और शुद्धता को कभी भी भूल मत जाना। शुद्धता तो निरन्तर याद रखने योग्य हैं ।।३।।

चित्त से प्रमाद को छोड़कर ऊँची-ऊँची दशा को धारण करो। ऊँची-ऊँची दशा को धारण करके, नीचे जमीन पर मत गिरो ।।४।।

कविवर भागचंदजी कहते हैं कि ऐसा करने से जीव अपार सुख प्राप्त करता है। स्याद्वाद शैली से प्रतिपादन करने पर ऐसा निर्धारण हो जाता है ।।५।।

इसप्रकार इस भजन में भी शुद्धोपयोग को सर्वोत्कृष्ट धर्म बताया गया है तथा पाप (अशुभ) को तो पूरी तरह त्यागने का आदेश दिया है, **साथ में पुण्य (शुभ) में मगन होने का भी निषेध किया गया है।**

शुद्धोपयोगी श्रमण

(७१)

समणा सुद्धुवजुत्ता सुहोवजुत्ता य होंति समयम्हि।
तेसु वि सुद्धुवजुत्ता अणासवा सासवा सेसा ।।

(हरिगीत)

शुद्धोपयोगी श्रमण हैं शुभोपयोगी भी श्रमण।
शुद्धोपयोगी निरास्रव हैं आस्रवी हैं शेष सब ।।

श्रमण दो प्रकार के होते हैं – शुद्धोपयोगी और शुभोपयोगी। शुद्धोपयोगी श्रमण निरास्रव होते हैं, शेष सास्रव होते हैं – ऐसा शास्त्रों में कहा है।

तात्पर्य यह है कि शुभोपयोग से आस्रव व बंध ही होते हैं; संवर, निर्जरा व मोक्ष नहीं। इसीप्रकार शुद्धोपयोग से संवर, निर्जरा व मोक्ष ही होते हैं; आस्रव व बंध नहीं।

यह गाथा भी प्रवचनसार नामक शास्त्र की २४५वीं गाथा है। इसमें कहा गया है कि शुद्धोपयोगी श्रमण ही निरास्रवी होता है, अन्य नहीं।

जिनके सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान नहीं है; उनके नियम से सम्यक्चारित्र भी नहीं होता। अत: वे भले दिगम्बर वेष धारण किये हों, बाह्यक्रियाकाण्ड का पालन करते हों; पर सच्चे साधु नहीं हैं। वे तो मात्र वेषधारी हैं।

वे तो अभी पहले गुणस्थान में ही हैं। **सच्चे मुनिराज तो नीचे से नीचे**

छठवें-सातवें गुणस्थान में झूलनेवाले सन्त होते हैं।

छठवें गुणस्थान से बारहवें गुणस्थान के जीव **आचार्य, उपाध्याय और साधु होते हैं।** उसके ऊपर **१३वें व १४वें गुणस्थानवाले अरिहंत परमेष्ठी होते हैं,** उसके ऊपर वाले मुक्ति को प्राप्त **सिद्ध भगवान सिद्धपरमेष्ठी हैं।**

यह सब चर्चा छठवें-सातवें गुणस्थान और उसके ऊपरवाले दिगम्बर साधुओं की हो रही है। सातवें गुणस्थान और उसके ऊपरवाले तो शुद्धोपयोगी ही होते हैं।

यह चर्चा उन मिथ्यादृष्टि द्रव्यलिंगियों के शुभभावों की नहीं है; जिनके शुद्धपरिणति और शुद्धोपयोग तो है ही नहीं, मात्र कभी-कभी शुभभाव होते हैं और नग्नवेश आदि क्रियाओं को सावधानीपूर्वक आचरते हैं।

वे तो वेषधारी हैं। उनके शुभाशुभभाव तो अनुकूल-प्रतिकूल संयोगों के ही कारण हैं।

यहाँ जो शुद्धोपयोगी और शुभोपयोगी भेद किये गये हैं; वे सब तो भावलिंगियों के ही भेद हैं।

छठवें गुणस्थानवाले तीन कषाय के अभाववाले भावलिंगी मुनिराज शुद्धपरिणति के कारण सच्चे साधु हैं। उनके शुभोपयोग को यहाँ स्वर्गसुख का कारण बताया गया है; क्योंकि शुद्धोपयोग और शुद्धपरिणति तो बंध का कारण होती ही नहीं है।

इस कथन का मुख्य अभिप्राय यह है कि उच्चकोटि का स्वर्ग का सुख भी शुद्धपरिणतिवाले शुभोपयोगी भावलिंगी सन्तों को ही प्राप्त होता है; साधारण शुभभाववालों को नहीं।

सच्चा श्रमण

(७२)

समसत्तुबंधुवग्गो समसुहदुक्खो पसंसणिंदसमो।
समलोट्ठकंचणो पुण जीविदमरणे समो समणो ॥

(हरिगीत)

लोह-कंचन बन्धु-अरि सुख-दुःख प्रशंसा-निन्द में।
शुद्धोपयोगी श्रमण का समभाव जीवन-मरण में ॥

जिसे शत्रु और बन्धुवर्ग समान हैं, सुख-दुःख समान हैं, प्रशंसा-निन्दा समान हैं, लोहा और सोना समान हैं, जीवन और मरण भी समान हैं, वही सच्चा श्रमण है। तात्पर्य यह है कि **अनुकूल-प्रतिकूल सभी संयोगों में समताभाव रखना ही श्रमणपना है।**

यह प्रवचनसार शास्त्र की २४१वीं गाथा है। इसमें सच्चे श्रमण का स्वरूप समझाया गया है।

सच्चे श्रमण तो वही हैं; जिनके हृदय में शत्रुओं के प्रति द्वेषभाव न हो। वस्तुत: देखे तो श्रमणों के कोई शत्रु होते ही नहीं; क्योंकि वे तो किसी से बैरभाव रखते ही नहीं हैं। जिनके अनंतानुबंधी, अप्रत्याख्यानावरण और प्रत्याख्यानावरण कर्म संबंधी क्रोध-मान-माया और लोभ समाप्त हो गये हों, कोई व्यक्ति उनका शत्रु कैसे हो सकता है ?

कोई अपनी कषायों के कारण उनसे शत्रुता पालो तो पालो; वे किसी से शत्रुता नहीं पालते। उनकी वृत्ति और प्रवृत्ति तो सदा ही **न काहू से दोस्ती न काहू से बैर** वाली होती है। **वे तो सदा सहज ज्ञाता-दृष्टाभाव में रहते हैं।**

जिसप्रकार वे शत्रुओं से शत्रुता नहीं रखते; उसीप्रकार अत्यन्त नजदीकी बन्धुओं से रागभाव भी नहीं रखते। वे तो सभी से समताभाव ही रखते हैं, समानता का व्यवहार करते हैं।

इसीप्रकार लौकिक अनुकूलतारूप सुख में प्रसन्न नहीं होते और प्रतिकूलतारूप दु:ख में अप्रसन्न नहीं होते। सदा समताभाव में ही रहते हैं।

होकर सुख में मगन न फूलें, दु:ख में कभी न घबरावें -

ऐसी वृत्ति और प्रवृत्ति धारण करनेवाले श्रमण प्रशंसा और निन्दा में समानभाव धारण करते हैं।

यशस्कीर्ति कर्म के उदय में प्रशंसा और अयशस्कीर्ति कर्म के उदय में निन्दा तो होती ही रहती है; यश और अपयश तो लगे ही रहते हैं, पर श्रमणों पर उनका कोई असर नहीं पड़ता। **प्रशंसा और निन्दा में भी वे सदा समान भाव ही रखते हैं।**

उनके सामने लोहा और सोना - दोनों ही समान हैं। जब उन्होंने अपने जीवन में कोई सम्पत्ति ही नहीं रखी; सब कुछ ही त्याग दिया है; तब फिर उसके लौकिक मूल्य से उन्हें क्या फरक पड़ता है। सोना महँगा और लोहा सस्ता – इसप्रकार के विकल्पों से उन्हें क्या लेना-देना ?

अधिक क्या कहें ? जब उनके लिए जीवन और मरण – ये दोनों ही समान हो गये तो फिर अन्य बातों से क्या प्रयोजन रह जाता है ?

जीवन-मरण के संबंध में उनका चिन्तन इसप्रकार रहता है कि -

लाखों वर्षों तक जीऊँ या मृत्यु आज ही आ जावे।

उन्हें न तो अधिक जीने की इच्छा है और न किसी भी प्रकार का मरणभय ही है। जीवन की चाह के साथ मरण की भी चाह नहीं है। बस **जिये तो प्रसन्नतापूर्वक जीने के लिए तैयार और मृत्यु आ जाये तो अत्यन्त साम्यभाव पूर्वक मृत्यु स्वीकार।**

इसप्रकार सच्चे श्रमणों के शत्रु और बन्धुवर्ग, लौकिक सुख और दु:ख, प्रशंसा और निन्दा, लोहा और सोना तथा जीवन और मरण - सभी में समताभाव रहता है, कहीं भी राग-द्वेष नहीं रहता।

इसीप्रकार का एक छन्द आचार्य अमितगति सामायिक पाठ में लिखते हैं; जो इसप्रकार है -

(उपजाति)

दु:खे सुखे वैरिणि बन्धुवर्गे योगे वियोगे भवने वने वा।
निराकृताशेषममत्वबुद्धे: समं मनो मेऽस्तु सदापि नाथ ।।

(हरिगीत)

सुख-दुख वैरी बन्धु वर्ग में, काँच-कनक में समता हो।
वन-उपवन प्रासाद कुटी में, नहीं खेद नहिं ममता हो ।।

दु:ख में, सुख में, बन्धुवर्ग में, बैरियों में, संयोग में, वियोग में, भवन में, वन में जिनका सम्पूर्ण ममत्व टूट गया हो। हे नाथ ! मेरा मन सदा इसप्रकार के सभी संयोगों में समताभाव धारण करे।

पण्डित दौलतरामजी छहढाला में लिखते हैं -

अरि-मित्र, महल-मसान, कंचन-कांच निन्दन-थुतिकरन।
अर्घावतारण – असिप्रहारन में सदा समता धरन।।

शत्रु और मित्र, महल और मसान, कंचन और कांच, स्तुति करने वाले और निन्दा करनेवाले, अर्घ-उतारने (आरती करने) और तलवार का प्रहार करनेवालों में वे मुनिराज सदा ही समताभाव धारण करते हैं।

तात्पर्य यह है कि शत्रु से नाराज नहीं होते, मित्र से प्रसन्न नहीं होते; महल से राग नहीं करते और श्मशान से द्वेष नहीं करते; कंचन (सोने) से राग नहीं करते और कांच में अरुचि नहीं दिखाते; स्तुति करनेवाले से प्रसन्न नहीं होते और निन्दा करनेवाले से अप्रसन्न नहीं होते तथा **अर्घ उतारने (पूजन करने-आरती करने) वालों से प्रसन्न नहीं होते और तलवार से प्रहार करनेवालों से नाराज नहीं होते। सभी से समानरूप से समताभाव रखते हैं।**

इसप्रकार हमारे गुरुराजों (मुनिराजों) की वृत्ति और प्रवृत्ति तो समताभावमय होती है।

भावश्रमण सुखी

(७३)

भावसवणो वि पावइ सुक्खाइं दुहाइं दव्वसवणो य।
इय णाउं गुणदोसे भावेण य संजुदो होह।।

(हरिगीत)

भावलिंगी सुखी होते द्रव्यलिंगी दुःख लहें।
गुण-दोष को पहिचान कर सब भाव से मुनि पद गहें।।

भावश्रमण सुख को प्राप्त करता है और द्रव्यश्रमण दुख को प्राप्त करता है। इसप्रकार गुण-दोषों को जानकर हे जीव ! तू भावसहित संयमी बन; कोरा द्रव्यसंयम धारण करने से कोई लाभ नहीं।

यह गाथा अष्टपाहुड़ के भावपाहुड़ अधिकार की १२७वीं गाथा है। इसमें भावश्रमण होने का उपदेश दिया गया है।

जो श्रमण भावश्रमण हैं, वे सच्चा सुख प्राप्त करते हैं। जहाँ सदा सच्चा सुख/अतीन्द्रिय आनन्द निरन्तर प्राप्त है -ऐसे मोक्ष को भावलिंगी सच्चे श्रमण ही प्राप्त करते हैं तथा भावश्रमण सच्चा सुख प्राप्त करते ही हैं।

भाव श्रमणत्व बिना जो अकेला द्रव्यश्रमणत्व धारण करते हैं; वे श्रमण दुःखी होते हैं, दुःख को प्राप्त करते हैं। वास्तव में तो वे श्रमण हैं ही नहीं। वे तो श्रमणाभास हैं।

आचार्यदेव उपदेश देते हैं; आदेश देते हैं कि हे श्रमणो ! गुण-दोषों को पहिचान कर भावलिंग को धारण करो।

ध्यान रहे सच्चे भावलिंग के साथ द्रव्यलिंग तो होता ही है, नियम से होता है।

भावलिंग के बिना द्रव्यलिंग तो कोई भी धारण कर सकता है, पर द्रव्यलिंग धारण किये बिना भावलिंग नहीं होता।

मिथ्यात्व और तीन कषाय अर्थात् अनंतानुबंधी, अप्रत्याख्यान और प्रत्याख्यानावरण संबंधी क्रोध, मान, माया और लोभ के अभाव में होनेवाली शुद्धपरिणति और शुद्धोपयोग भावलिंग है और नग्न दिगम्बर वेश और महाव्रतादि के शुभभाव द्रव्यलिंग हैं।

उक्त भावलिंग और द्रव्यलिंग जिनके विद्यमान हों, वे भावलिंगी मुनिराज कहलाते हैं। इसप्रकार भावलिंगी मुनिराजों के द्रव्यलिंग तो होता ही है। अत: एकप्रकार से उन्हें भी द्रव्यलिंगी कह सकते हैं। ध्यान रहे इसप्रकार के द्रव्यलिंगी सच्चे दिगम्बर साधु हैं, शेष द्रव्यलिंगियों से भिन्न हैं।

दूसरे वे द्रव्यलिंगी, जिन्होंने नग्न दिगम्बर वेश तो धारण कर लिया; पर परिणति तीन कषाय के अभावरूप न हो, छठवें-सातवें गुणस्थान के अनुरूप न हो। पर मिथ्यात्व, अनंतानुबंधी, अप्रत्याख्यानावरण के अभावरूप पंचम गुणस्थान या मिथ्यात्व, अनंतानुबंधी कषाय के अभाव रूप चौथे गुणस्थान के योग्य हो।

तीसरे वे जिन्होंने नग्न दिगम्बर वेष तो धारण कर लिया हो, पर मिथ्यात्व और कषायों का अभाव हो ही नहीं। मिथ्यात्व नामक पहले गुणस्थान में हो। ये सभी द्रव्यलिंगी कहलाते हैं।

सबसे अधिक निन्दनीय प्रथम गुणस्थानवाले द्रव्यलिंगी ही हैं। वे सदा दुःखी ही रहते हैं।

प्रथम गुणस्थानवालों में भी अनेक साधु एकदम शान्त होते हैं, उनकी चर्या भी आगमानुसार होती है। ऐसे अनेक द्रव्यलिंगी नवमें ग्रैवेयक तक चले जाते हैं।

निन्दा योग्य तो वे नटश्रमण हैं, जो अनेक दोषों से युक्त होते हैं। उनकी आलोचना अष्टपाहुड़ आदि ग्रन्थों में जमकर की गई है; क्योंकि वे न केवल स्वयं का अकल्याण कर रहे हैं, अपितु पत्थर की नौका के समान दूसरों को भी डुबा रहे हैं; धर्म को बदनाम कर रहे हैं।

भाव से नग्न होना ही ठीक है...

(७४)

भावेण होइ णग्गो मिच्छत्ताईं य दोस चइऊणं।
पच्छा दव्वेण मुणी पयडदि लिंगं जिणाणाए।।

(हरिगीत)

मिथ्यात्व का परित्याग कर हो नग्न पहले भाव से।
आज्ञा यही जिनदेव की फिर नग्न होवे द्रव्य से।।

पहले मिथ्यात्वादि दोष छोड़कर भाव से नग्न हो, पीछे नग्न दिगम्बर द्रव्यलिंग धारण करे – ऐसी जिनाज्ञा है। तात्पर्य यह है कि **मिथ्यात्व छोड़े बिना, सम्यग्दर्शन–ज्ञान प्राप्त किए बिना, नग्नवेष धारण कर लेने से कोई लाभ नहीं है, अपितु हानि ही है।**

यह गाथा अष्टपाहुड़ के भावपाहुड़ अधिकार की ७३वीं है। इसमें बताया गया है कि **पहले भाव से नग्न होना चाहिए।**

आचार्यदेव कह रहे हैं कि पहले मिथ्यात्व आदि दोषों को छोड़कर भाव से नग्न होना चाहिए। उसके बाद में द्रव्य से नग्न होना चाहिए – जिनेन्द्रदेव की ऐसी आज्ञा है।

द्रव्य से नग्न होना अर्थात् नग्न दिगम्बर वेश धारण करना है। भाव से नग्न होने का अर्थ नग्न दिगम्बर वेश धारण करने से नहीं है; क्योंकि नग्न दिगम्बर वेश धारण करना तो द्रव्य से नग्न होना है।

मिथ्यात्व और अनंतानुबंधी, अप्रत्याख्यानावरण और प्रत्याख्यानावरण कषाय के त्यागका नाम भाव नग्न होना है।

भावों की विशुद्धि बिना मात्र वेश धारण करने से आत्मशुद्धि तो होती ही नहीं है, दुःख भी दूर नहीं होते।

सच्चे भावलिंगी तो मिथ्यात्व, अनंतानुबंधी, अप्रत्याख्यानावरण, प्रत्याख्यानावरण कषाय चौकड़ी से रहित नग्न दिगम्बर शुद्धोपयोग या शुभोपयोगवाले मुनिराज होते हैं।

कोरा नग्न दुःख पाता है

(७५)

णग्गो पावइ दुक्खं णग्गो संसारसायरे भमई।
णग्गो ण लहइ बोहिं जिणभावणवज्जिओ सुइरं।।

(हरिगीत)

जिन भावना से रहित मुनि भव में भ्रमें चिरकाल तक।
हों नगन पर हों बोधि-विरहित दुःख लहें चिरकाल तक।।

जिनभावना से रहित अर्थात् सम्यग्दर्शन–ज्ञान–चारित्र से रहित मात्र द्रव्यलिंग धारण कर लेने वाला नग्न व्यक्ति दुःखों को प्राप्त करता है, चिरकाल तक संसार–सागर में परिभ्रमण करता है। ऐसा नग्न व्यक्ति बोधि को प्राप्त नहीं होता।

यह गाथा अष्टपाहुड़ के भावपाहुड़ की ६८वीं गाथा है। इसमें बताया गया है कि **जिनभावना से रहित मुनिवर अनन्तकाल तक दुःख पाते हैं।**

जिनभावना से रहित मुनिराज निश्चय सम्यग्दर्शन–ज्ञान–चारित्र से रहित होने से अनन्त काल तक संसार सागर में घूमते रहते हैं, भटकते रहते हैं, दुःख भोगते रहते हैं।

निश्चय रत्नत्रय बिना कोरे नग्न दिगम्बर वेश धारण करने से दुःखों से छुटकारा नहीं मिलता। ऐसे नग्न वेशधारी दुःख ही प्राप्त करते हैं। उन्हें बोधि की प्राप्ति नहीं होती।

यद्यपि यह सत्य है कि नग्न दिगम्बर दशा धारण किये बिना किसी को मुक्ति की प्राप्ति नहीं होती; तथापि निश्चय रत्नत्रय के बिना दिगम्बर वेशधारियों को भी मुक्ति की प्राप्ति नहीं होती; वे संसार सागर में ही गोते खाते रहते हैं।

भावरहित को सिद्धि नहीं

(७६)

भावरहिओ ण सिज्झइ जइ वि तवं चरइ कोडिकोडीओ।
जम्मंतराइ बहुसो लंबियहत्थो गलियवत्थो।।

(हरिगीत)

वस्त्रादि सब परित्याग कोड़ाकोड़ि वर्षों तप करें।
पर भाव बिन ना सिद्धि हो सत्यार्थ यह जिनवर कहें।।

वस्त्रादि त्यागकर, हाथ लम्बे लटकाकर, जन्मजन्मान्तरों में कोटि–कोटि वर्षों तक तपश्चरण करें तो भी भाव रहित को सिद्धि प्राप्त नहीं होती। तात्पर्य यह है कि अंतरंग में भावों की शुद्धि बिना बाह्य में कितना

ही तपश्चरण करे, कोई लाभ प्राप्त होने वाला नहीं है।

यह गाथा अष्टपाहुड़ शास्त्र के भावपाहुड़ की चौथी गाथा है। इसमें कहा गया है कि वस्त्रादि सभी परिग्रहों का त्याग कर दे और लम्बे हाथ लटका कर करोड़ों वर्ष तप करे; फिर भी भावरहित श्रमण को मुक्ति प्राप्त नहीं होगी।

जगत में कुछ लोग उन लोगों को बहुत बड़ा तपस्वी मानते हैं; जो लम्बे हाथ लटका कर अनेक जन्म-जन्मान्तरों तक करोड़ों-करोड़ों वर्षों तक तप करते हैं।

लम्बे हाथ लटका कर खड़े होने में, अन्य कष्ट तो जो हैं, सो हैं ही; विशेष बात यह है कि ऐसी स्थिति में नग्नता स्पष्ट दिखाई देती है।

यदि मन में कोई विकृति हो तो उसके प्रगट हो जाने की आशंका निरन्तर बनी रहती है। तत्संबंधी सावधानी भी अत्यन्त आवश्यक है।

ऐसी उग्र तपस्या करनेवाले भी यह नहीं समझते कि शुद्धोपयोगरूप भाव के बिना जड़देह की क्रिया से तो कुछ भी होनेवाला नहीं है। मुक्ति की प्राप्ति होनेवाली नहीं है, कार्यसिद्धि होनेवाली नहीं है। इसप्रकार हम देखते हैं कि भावशुद्धि के बिना कुछ भी होना संभव नहीं है।

द्रव्य से तो सभी नग्न होते हैं

(७७)

दव्वेण सयल णग्गा णारयतिरिया य सयलसंघाया।
परिणामेण असुद्धा ण भावसवणत्तणं पत्ता।।

(हरिगीत)

नारकी तिर्यंच आदिक देह से सब नग्न हैं।
सच्चे श्रमण तो हैं वही जो भाव से भी नग्न हैं।।

द्रव्य से बाह्य में तो सभी प्राणी नग्न होते हैं। नारकी व तिर्यंच जीव तो सदा नग्न रहते ही हैं, स्पर्शन इन्द्रिय के विषय पोषण आदि कारण पाकर मनुष्यादि भी नग्न होते देखे जाते हैं। कुछ जंगली जातियों के स्त्री-पुरुष आज भी नग्न रहते देखे जाते हैं। समय-समय पर डिस्कवरी

चेनल पर ऐसे अनेक कार्यक्रम आते हैं; जिनमें नग्न रहनेवाली जातियों को दिखाया जाता है। पर वे सभी परिणामों के अशुद्ध होने से भावश्रमणपने को प्राप्त नहीं होते।

यह गाथा अष्टपाहुड़ शास्त्र के भावपाहुड़ की ६७वीं गाथा है। इसमें यह कहा गया है कि शरीर से तो पशु आदि सभी नग्न होते हैं। **सच्चा दिगम्बर साधु तो वही है, जो भाव से भी नग्न हो।**

यद्यपि यह परम सत्य है कि नग्न दिगम्बर वेश धारण किये बिना किसी को भी मुक्ति की प्राप्ति नहीं होती; तथापि यह भी उतना ही बड़ा सत्य है कि भाव बिना, शुद्धोपयोगरूप भाव बिना नग्न दिगम्बरों को भी मुक्ति की प्राप्ति नहीं होती।

फिर भी कुछ लोग नग्नता के अभिमान में भावों पर ध्यान ही नहीं देते; यहाँ उन्हें समझाते हुए नग्नता की निरर्थकता और भावों की सार्थकता पर विशेष बल दिया है। अनेक तर्क और युक्तियों के आधार पर यह समझाया जा रहा है कि हमें बाह्य क्रियाकाण्ड की अपेक्षा भावों पर ध्यान देना चाहिए। **(क्रमशः)**

दशलक्षण महापर्व हेतु सूचना

दशलक्षण महापर्व के अवसर पर प्रवचनार्थ विद्वानों को बुलाने हेतु पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट को आमंत्रण-पत्र समाज/मंदिर/संस्था के लेटर पेड पर शीघ्र भेजें; ताकि समय रहते उचित व्यवस्था की जा सके।

प्रवचनार्थ जाने वाले विद्वानों से अनुरोध है कि यदि उन्होंने अपनी स्वीकृति अभी तक नहीं भेजी है तो तत्काल जयपुर कार्यालय को पत्र/फोन/ई-मेल द्वारा भेजें।

यद्यपि सभी विद्वानों को जयपुर कार्यालय से अनुरोध पत्र भेजे गए हैं, परन्तु यदि डाक की गड़बड़ी से समय पर न मिले हो तो भी अपनी स्वीकृति हमें शीघ्र नोट करा देवें। **– मंत्री**

स्वीकृति भेजने का पता – **दशलक्षण पर्व व्यवस्था विभाग,**
ज्ञानतीर्थ श्री टोडरमल स्मारक भवन, ए-4, बापूनगर, जयपुर (राज.) 302015
फोन नं.– 0141-2705581, 2707458, E-mail : ptstjaipur@yahoo.com

छहढाला प्रवचन

श्रावक के चार शिक्षाव्रत

धरि उर समता भाव, सदा सामायिक करिये।
परव चतुष्टय मांहि, पाप तज प्रोषध धरिये।।
भोग और उपभोग, नियम करि ममत निवारै।
मुनि को भोजन देय, फेर निज करहि अहारै।।१४।।

(सुप्रसिद्ध आध्यात्मिक विद्वान पण्डित दौलतरामजीकृत छहढाला की चौथी ढाल पर गुरुदेवश्री के प्रवचन पाठकों के लाभार्थ यहाँ प्रस्तुत किये जा रहे हैं।)

(गतांक से आगे....)

व्रतधारी श्रावक को सामायिक, प्रोषधोपवास, भोगोपभोगपरिमाण, अतिथिसंविभागरूप भाव सहज होते हैं, उन्हें शिक्षाव्रत कहते हैं, वे व्रत मुनिपने के अभ्यासरूप शिक्षा प्रदान करते हैं।

राग और चैतन्य की भिन्नता का जहाँ अनुभव हुआ, वहीं राग-द्वेष रहित वीतरागी समभावरूप सामायिक होती है। ज्ञान चेतना कहो या समभाव कहो। श्रावक जब प्रतिदिन दो घड़ी अपने परिणाम को चैतन्य में स्थिर रखने का प्रयोग करता है और निर्विकल्प होकर स्वभाव में उपयोग जोड़ता है, तब उसे सामायिक होती है। श्रावक ध्यान धर के सामायिक में बैठा हो और उस समय कोई उपसर्ग उस पर आ जाय तो वह डिगता नहीं। सामायिक के काल में श्रावक को वस्त्र से ढके हुए मुनि के समान कहा है। ऐसी सामायिक मोक्ष का कारण है। आजकल तो बहुत से लोग उसको भूलकर मात्र बाह्य में स्थिर बैठ जाने को सामायिक मान रहे हैं, उससे शुभराग होने पर पुण्य बंधेगा, परन्तु वह कहीं मोक्ष का कारण नहीं होगा।

श्रावक को पाँच अणुव्रत, तीन गुणव्रत और चार शिक्षाव्रत - इसप्रकार

बारह व्रत होते हैं। दूसरी 'व्रतप्रतिमा' में उनका निरतिचार पालन होता है। पहली प्रतिमा 'दर्शनप्रतिमा' है, उसमें अष्ट मूलगुणों का सम्यक्त्व सहित निरतिचार पालन होता है। तत्पश्चात् परिणामों की शुद्धि अनुसार 'सामायिक प्रतिमा' से लगाकर 'उद्दिष्टत्याग प्रतिमा' (ऐलकपना) तक ११ प्रतिमायें होती हैं। ऐलक दशा उत्कृष्ट श्रावक दशा है, उसके बाद मुनिदशा होती है। ऐसी ग्यारह प्रतिमाओं के क्रमपूर्वक ही मुनिदशा होती हो - ऐसा कोई नियम नहीं, क्षुल्लक-ऐलक हुए बिना भी कोई सम्यग्दृष्टि सीधा ही मुनिदशा में होनेवाला चारित्र प्रकट करता है। मुनिदशा की तो बात परम अद्भुत है। वे तो परमेष्ठी पद में हैं - इस मुनि जीवन के महा आनन्द की क्या बात ? इन सबके मूल में धर्मी को वीतराग-स्वभाव की दृष्टि निरन्तर लाभ करती है, उसी के बल पर वीतरागी धर्मों का वृक्ष फलता है।

जिसको मिथ्यात्वादि शल्यें हों उसको व्रत नहीं होते, कहा भी है 'नि:शल्योव्रती'। अरे ! व्रत में बहुत वीतरागता है, उसमें मिथ्यात्व माया और निदान कैसे ? पुण्य-फल की वांछा वहाँ नहीं होती। जैसे अन्दर मांस में लोहे की कील घुसी हो तो गाँठ कभी ठीक नहीं हो सकती, वैसे ही जिसे अन्दर में राग की या विषयों की रुचिरूप मिथ्यात्वादि शल्यें पड़ी हों, उसके राग-द्वेष की गाँठ कभी नहीं फूटती अर्थात् वीतरागी समभावरूप सामायिकादि व्रत उसके नहीं होते। ज्ञानस्वभाव की अनुभूति से मिथ्यात्वादि और निन्दा या अपयश भी कैसा ?

अहा ! पाँचवें गुणस्थान में धर्मात्मा को अपयश, अनादेय या दुर्भग प्रकृति का उदय ही नहीं है। देखो तो सही, वीतराग परिणति की शक्ति ! जहाँ ऐसी वीतरागता वर्तती हो, वहाँ अपयशादि का उदय किसमें आवे ? यह तो यश-अपयश से पार अपने समभाव में विराजता है।

धर्मात्मा को मुनिवरों के प्रति तथा साधर्मी श्रावकों के प्रति विशेष प्रेम होता है। वे भोजन के समय प्रतिदिन उन्हें स्मरण करके भावना भाते हैं कि

कोई रत्नत्रय के साधक सन्त मुनिराज पधारें। ऐसे सन्त को भोजन कराने का प्रसंग बनने पर धर्मी के हृदय में अत्यन्त प्रसन्नता होती है, रत्नत्रय के प्रति उसकी भक्ति उछल पड़ती है।

इसप्रकार श्रावक को १२ व्रत होते हैं, उनमें परिणाम की जितनी शुद्धता है, उतना तो निश्चयव्रत है और उसके साथ जितना शुभराग शेष रहा, उसमें व्रत का उपचार है। इसप्रकार निश्चय-व्यवहार का स्वरूप जानना। शुद्धता तो मोक्ष का कारण है और शुभराग स्वर्ग का कारण है। दोनों भावों को भिन्न-भिन्न पहचानना और व्रतों का पालन करना - यही जीवन में कल्याण का मार्ग है।

बारह व्रतों का वर्णन करके अब उनके निरतिचार पालन करने का तथा अन्त समय में सल्लेखना धारण करने का उपदेश देते हैं। **(क्रमशः)**

(पृष्ठ 25 का शेष ...)

रुपये का सौदा ले जाना तो स्वीकार किया; किन्तु ५०० रुपये जो नगद ले गया था, वह स्वीकार नहीं किया। इसप्रकार मूल मुद्दे की रकम से इन्कार कर दिया; परन्तु वह बही-खाते में से कैसे निकले? और वह ऋणमुक्त कैसे हो?

उसीप्रकार धर्म के नाम पर कोई कहे कि दया पालो, रुपया दान में दो; तब अज्ञानी जीव कहता है कि 'हाँ, बराबर है'। पुनः कहे कि 'आहारशुद्धि इसप्रकार रखना तब उत्तर दे कि 'हाँ, आपका कहना बराबर है'। परन्तु जब कोई कहे कि 'दया-दान के भाव आकुलता हैं, उनसे धर्म नहीं; उनसे रहित तू शुद्ध चैतन्य आत्मा परिपूर्ण भगवान है, उसकी श्रद्धा से धर्म होता है'; तब कहता है कि 'हम भगवान नहीं, हमें तो आत्मा की बात की खबर नहीं है'। इसप्रकार स्वयं शुद्धचैतन्यस्वरूपी है - ऐसी मान्यता करने की मूल मुद्दे की रकम को उड़ाता है; परन्तु वह कभी मिथ्यात्वरहित नहीं होता। **(क्रमशः)**

नियमसार प्रवचन -

आचार में स्थिरता वाला प्रतिक्रमणमय

परमपूज्य सर्वश्रेष्ठ दिगम्बराचार्य कुन्दकुन्द के प्रसिद्ध परमागम नियमसार के परमार्थप्रतिक्रमणाधिकार की गाथा ८५ पर हुये आध्यात्मिकसत्पुरुष श्रीकानजीस्वामी के अध्यात्मरस गर्भित प्रवचनों का संक्षिप्त सार यहाँ दिया जा रहा है। गाथा मूलतः इसप्रकार हैं -

मोत्तूण अणायारं आयारे जो दु कुणदि थिरभावं।
सो पडिकमणं उच्चइ पडिकमणमओ हवे जम्हा ।।८५।।

(हरिगीत)

जो जीव छोड़ अनाचरण आचार में थिरता धरे।
प्रतिक्रमणमय है इसलिए प्रतिक्रमण कहते हैं उसे ।।८५।।

जो जीव अनाचार छोड़कर आचार में स्थिरता करता है, वह जीव प्रतिक्रमण कहा जाता है; क्योंकि वह प्रतिक्रमणमय है।

(गतांक से आगे....)

'सहज' शब्द नवीन पर्याय के लिए भी प्रयोग किया जाता है। सहज अर्थात् हठ से नहीं; अपितु स्वाभाविक वीतरागदशारूप से परिणमा है। इसप्रकार स्वभाव-सन्मुख दशा होने पर सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र तीनों आ जाते हैं, ऐसे निरंजन परमात्मा की भक्ति से तपोधनरूपी लक्ष्मी मिलती है। ऐसी लक्ष्मी इन्द्रों के पास भी नहीं है। लोग जिसे लक्ष्मी कहते हैं, वह तो धूल है; उसमें कुछ माल नहीं है, वास्तविक लक्ष्मी तो यह है। निज परमात्म तत्त्व की भावना भाना ही आचार है, शेष सभी अनाचार हैं। आत्मा के स्वभाव में सहज स्थिर होनेवाला ही तपोधन है। कोई हठपूर्वक शरीर को अमुक रीति से बैठाने का प्रयत्न करे, कोई शब्द बोले, 'मिच्छामि दुक्कडं' इत्यादि बोले - वह प्रतिक्रमण नहीं है। शरीर की क्रिया, शब्दों का बोलना इत्यादि जड़ की क्रिया है, आत्मा जड़ की

क्रिया नहीं कर सकता। जो शुभाशुभभाव होता है, वह सब अनाचार है। शुद्धात्मा की आराधना करना ही आचार और प्रतिक्रमण है।

सम्यग्दर्शन होने के बाद अपने ज्ञानस्वभाव में ठहर जाना और शुभाशुभभाव उत्पन्न ही न होवें अर्थात् निजपरमात्मा की श्रद्धा-ज्ञान-रमणता करने को भावनास्वरूप प्रतिक्रमण कहते हैं, कारण कि वह परमसमरसी भावनारूप से परिणमा है। यहाँ दृष्टि उपरान्त विशेष स्थिरता की बात है, मुनिपने की बात है। पुण्य-पाप के भाव छोड़कर समरस-शान्तस्वरूप में लीन होना स्वाभाविक प्रतिक्रमण है। मुनि प्रतिक्रमण करनेवाले और वीतरागी पर्याय प्रतिक्रमण - इसप्रकार आत्मा और उसकी नवीन पर्याय के बीच में भेद नहीं है। आत्मा के साथ पर्याय अभेद हो गई है, इसलिए प्रतिक्रमणमय कहा है। 'सहज' शब्द द्रव्य-गुण-पर्याय तीनों के साथ प्रयुक्त होता है। यहाँ नई पर्याय प्रकटी, उसमें भी सहज शब्द का प्रयोग हुआ है। सहज अर्थात् अपने स्वभाव के आश्रय से प्रकट होना, इसका नाम निश्चयप्रतिक्रमण है।

प्रथम स्वलक्ष्यपूर्वक सत्समागम से वस्तुस्वरूप सुनना चाहिए; क्योंकि सुने बिना लक्ष्य स्वतरफ नहीं होता, लक्ष्य बिना सम्यग्दर्शन नहीं होता, सम्यग्दर्शन बिना चारित्र नहीं, चारित्र बिना प्रतिक्रमण नहीं, प्रतिक्रमण बिना वीतरागता और शान्ति नहीं और वीतरागता बिना केवलज्ञान व मुक्ति नहीं हो सकती; इसलिए सर्वप्रथम यथार्थ वस्तुस्वरूप समझना चाहिए।

आत्मा शुद्ध चैतन्यस्वभावी है – यह मूल प्रयोजनभूत बात स्वीकार किए बिना जीव मिथ्यात्व से विमुख नहीं होता।

(मालिनी)

अथ निजपरमानन्दैकपीयूषसान्द्रं
स्फुरितसहजबोधात्मानमात्मानमात्मा।
निजशममयवार्भिर्निर्भरानंदभक्त्या
स्नपयतु बहुभिः किं लौकिकालापजालैः ।।११३।।

(हरिगीत)

रे स्वयं से उत्पन्न परमानन्द के पीयूष से।
रे भरा है जो लबालब ज्ञायकस्वभावी आतमा।।
अब उसे शम जल से नहाओ प्रशम भक्तिपूर्वक।
सोचो जरा क्या लाभ है इस व्यर्थ के आलाप से।।११३।।

आत्मा निज परमानन्दरूपी अद्वितीय अमृत से भरे हुए, स्फुरित[१]-सहज-ज्ञानस्वरूप आत्मा को निर्भर (भरपूर) आनन्द-भक्तिपूर्वक निज शममय जल द्वारा स्नान कराओ; बहुत लौकिक आलापजालों से क्या प्रयोजन (अर्थात् अन्य अनेक लौकिक कथनसमूहों से क्या कार्य सिद्ध हो सकता है?)

आत्मा निज परम आनन्दरूपी अजोड़ अमृत से भरा हुआ है। शरीर, कर्म आदि परवस्तु हैं, आत्मा में उनका अभाव है। पुण्य-पाप के भाव आकुलता हैं, उनसे रहित आत्मा अमृतकुण्ड से भरा है। पंचेन्द्रिय के विषयों में सुख है और दया-दान से कल्याण होगा - ऐसी मान्यता मिथ्यात्वरूपी महान पाप है। पुण्य-पाप के भावों में सुख नहीं, उन सबसे रहित आत्मा आनन्दकन्द है - ऐसी प्रथम ही पहिचान करनी चाहिए। इस पहिचान के बिना अपने ज्ञानस्वभाव से विपरीत मान्यता मिथ्यात्व है। द्यूतकर्म, मांस-भक्षण, सुरा-पान, वेश्या-गमन आदि जो सप्तव्यसन कहे हैं, उनसे अनन्तगुना पाप मिथ्यात्व में है; अतः इस जीव को सर्वप्रथम इस महान पाप का त्याग करना चाहिए। महान पाप को न त्यागे और अन्य पापों से बचने का उपाय करे तो कुछ भी कार्य सिद्ध नहीं होगा। महान पाप को हटाने के लिए सर्वप्रथम ज्ञानस्वभावी आत्मा को स्वीकार करना चाहिए; किन्तु अज्ञानी जीव उसे स्वीकार नहीं करता।

एक बनिये के यहाँ से कोई व्यक्ति सौदा उधार लेता था और कभी-कभी नगद रुपये भी उधार ले जाता था, जब अन्त में दीपावली पर हिसाब-किताब मिलाया गया तो उस व्यक्ति ने हल्दी, जीरा आदि दो

१. स्फुरित = प्रगट

(शेष पृष्ठ 22 पर ...)

समयसार की 47 शक्तियों पर प्रवचन

जीवत्व शक्ति

आध्यात्मिकसत्पुरुष श्रीकानजीस्वामी द्वारा समयसार की 47 शक्तियों पर किये गये प्रवचनों को यहाँ पाठकों के लाभार्थ क्रमशः प्रकाशित किया जा रहा है।

(गतांक से आगे....)

जीवनशक्ति को धरनेवाला ध्रुवधाम-चैतन्यधाम, प्रभु आत्मा की दृष्टि होते ही जो क्रमवर्ती जीवनशक्ति का निर्मल परिणमन हुआ, उसमें मलिन भाव का अभाव है, यह अनेकान्त है।

लोग ऐसा कहते हैं कि व्यवहार कारण और निश्चय कार्य – उसका यहाँ निषेध करते हैं।

व्यवहार से, राग से निश्चय वीतरागता प्रगट हो – ऐसा कभी नहीं बनता।

द्रव्यसंग्रह की ४७वीं गाथा में श्री नेमीचन्द्र सिद्धान्तदेव कहते हैं कि – पूर्णानन्द का नाथ एक ज्ञायकस्वरूप प्रभु का ध्यान करने से अन्दर में निश्चय मोक्षमार्ग प्रगट होता है तथा उसी के साथ व्यवहार मोक्षमार्ग भी प्रगट होता है –

इसका अर्थ यह है कि **ध्यानदशा में ध्यान के समय जितनी निर्मलता प्रगट हुई, उतना तो निर्मल रत्नत्रयरूप निश्चय मोक्षमार्ग है** तथा जो **अल्प रागांश बाकी है उस पर मोक्षमार्ग का आरोप देकर व्यवहार मोक्षमार्ग कहा है। इसका नाम निश्चय-व्यवहार मोक्षमार्ग ध्यान में एक साथ प्रगट होता है।**

व्यवहार मोक्षमार्ग कोई सत्यार्थ मोक्षमार्ग नहीं वह तो राग है, बंध का कारण है। जब दोनों साथ में हैं तो व्यवहार निश्चय का कारण हो – ऐसा कहाँ रहा? अपनी निर्मल परिणति अपने से हुई है, स्व-आश्रय से हुई है, राग से या व्यवहार से नहीं। इसका नाम अनेकान्त और स्याद्वाद है।

व्यवहार से भी हो और निश्चय से भी हो। ये स्याद्वाद नहीं।

अरे! ऐसे तत्त्व की समझ बिना बाह्य वैभववाले जीव भी दुःखी हैं। इन्हें अपनी अनन्त चैतन्य संपदा की खबर नहीं और बाहर भिखारी की तरह लाओ! लाओ! कहते हैं। शास्त्र में उन्हें 'वराका' अर्थात् विचारा कहा है।

अहा! मैं आनन्द का नाथ हूँ, मेरी चैतन्य खदान मैं आनन्द और शान्ति की सम्पदा पड़ी है। जिसे ऐसी अंतरंग लक्ष्मी की खबर नहीं और विषयों में झपट्टे मारते हैं, वे सभी भिखारी हैं।

आ हा हा......! **सच्चिदानन्द भगवान आत्मा अनन्त ज्ञान आनन्द का खजाना है। अनन्तशक्तियों का महानिधान हैं।** ऐसा शक्तिवान प्रभु और उसकी **जीवत्व आदि अनन्त शक्तियाँ पारिणामिकभावरूप हैं।** पारिणामिक, औपशमिक, क्षायिक और औदयिक भाव – ऐसे पाँच भाव हैं। त्रिकाली द्रव्य के आश्रय से जो निर्मल पर्यायें प्रगट होती हैं, वे औपशमिक क्षायोपशिमक और क्षायिक भाव रूप हैं और मोह के निमित्त से जो विकारी पर्यायें होती हैं वे औदयिक भाव हैं।

भाई! व्रत, दया, उपवास, दान आदि के शुभ परिणाम भी विकारी और औदयिक भाव हैं। भले ही वे जीव की पर्यायें हैं; परन्तु उनमें जीवत्व नहीं है, वे तो जीवत्व रहित अचेतन हैं। ऐसी दसा में उनमें से चैतन्य के निर्मल उपशमादि भाव प्रगट होंगे? ऐसा कभी भी नहीं हो सकता।

भगवान आत्मा चैतन्यमूर्ति में जैसे जीवत्वशक्ति है, वैसे ही षट्कारकों के रूप में भी छह शक्तियाँ हैं। इसकी **एक-एक शक्ति में षट्कारकों का रूप है।**

देखो! ज्ञान गुण है, वह कहीं कर्त्ता गुण के आश्रित नहीं है। तत्त्वार्थसूत्र में उमास्वामी आचार्य ने कहा है कि इसप्रकार एक गुण दूसरे गुण से भिन्न-भिन्न-अन्य है; **परन्तु एक गुण में दूसरे गुण का रूप है।** जैसे **ज्ञान स्वयं ही अपना कर्ता है ज्ञान स्वयं ही अपना कर्म है।** **(क्रमशः)**

ज्ञान गोष्ठी

सायंकालीन तत्त्वचर्चा के समय विभिन्न मुमुक्षुओं द्वारा
पूज्य स्वामीजी से पूछे गये प्रश्न और स्वामीजी द्वारा दिये गये उत्तर

प्रश्न : श्री वादिराज मुनिराज का कुष्ठरोग स्तुति करते ही मिट गया, मानतुंगाचार्यदेव के कारागार के ताले स्तुति करने से टूट गये, सीताजी के निर्दोष शील से अग्नि भी जलरूप हो गई – ऐसा कथन शास्त्र में आता है, इससे हम क्या समझें ?

उत्तर : पूर्व के पुण्य के योग से वादिराज मुनि का कुष्ठ मिट गया, मानतुंगाचार्य के ताले टूट गये और सीताजी का अग्निकुण्ड भी जलसरोवर बन गया; तब उस पुण्योदय का आरोप वर्तमान प्रभु-भक्ति और ब्रह्मचर्य आदि पर करने में आया – ऐसी प्रथमानुयोग की कथन पद्धति है – उसे यथावत् समझना चाहिए। मोक्षमार्ग प्रकाशक में पण्डित टोडरमलजी ने इसका विशेष स्पष्टीकरण किया है, वहाँ से देख लेना।

प्रश्न : द्रव्यानुयोग का पक्षपाती निश्चयाभासी हो सकता है क्या ?

उत्तर : हाँ, निश्चय का ज्ञान तो करले और अनुभव न करे तथा अपने को अनुभवी मान बैठे तो वह निश्चयाभासी है।

प्रश्न : मनुष्य का कर्त्तव्य क्या ? मानवधर्म क्या ? कृपया बतलाइये ?

उत्तर : अरे भाई ! सर्वप्रथम तो मैं मनुष्य हूँ – ऐसी मान्यता ही महान भ्रम है। मनुष्यपना तो संयोगी पर्याय है, जीव-पुद्गल के संयोगरूप असमान जातीय पर्याय है, आत्मा का स्वरूप तो नहीं। अत: मनुष्य पर्याय वह मैं नहीं, मैं तो ज्ञानस्वरूप आत्मा हूँ – ऐसा समझना, यही सबसे प्रथम कर्त्तव्य है – धर्म है। मनुष्यभव प्राप्त करके यदि कुछ करने योग्य है, तो यही है। इसके विपरीत मैं मनुष्य ही हूँ – ऐसा मानकर जो कुछ भी क्रियाकलाप करने में आता है, वह सब व्यवहारमूढ़ अज्ञानीजीवों का व्यवहार है।

प्रश्न : पैसा-वैभवादि में आकर्षणशक्ति बहुत प्रतीत होती है ?

उत्तर : पैसा-वैभवादि में आकर्षणशक्ति कुछ है ही नहीं, यह तो जीव के मोह की मूर्खता है – पागलपन है। पर में मोह करके अपना भव बिगाड़कर चौरासी के

भ्रमण में चला जाता है।

प्रश्न : अब तक अनन्तकाल में भी आत्मा को समझा नहीं तो अब कैसे समझ में आ जायेगा ?

उत्तर : अनन्तकाल में नहीं समझ पाया तो इसका अर्थ यह थोड़े ही है कि कभी समझ में आयेगा ही नहीं। क्या समझ-शक्ति नष्ट हो गयी है ? जैसे पानी अग्नि के निमित्त से सौ वर्ष तक ऊष्ण बना रहे तो क्या उसका शीतल स्वभाव नष्ट हो गया है ? यदि चूल्हे पर रखी हुई तपेली का ऊष्ण जल अग्नि के ऊपर गिर पड़े तो तत्समय भी वह अग्निनाशक स्वभाववाला ही है। वैसे ही अनन्तकाल से विपरीत रुचि के कारण आत्मा को नहीं समझा, परन्तु अब यदि रुचि गुलाँट मारे तो क्षणमात्र में आत्मा समझ में आ सकता है और तेरा कल्याण हो सकता है।

प्रश्न : स्वच्छन्दता का क्या अर्थ है ?

उत्तर : विकारी पर्याय मेरी नहीं है – ऐसा मानकर विकार का सेवन करे, अशुद्धता चाहे जितनी होती जाए; तथापि उसका सेवन करता रहे और ज्ञानवन्त को भोग निर्जरा का हेतु हैं – ऐसा पढ़कर मानने लगे कि हमारे भी भोग के भाव से, विषय-वासना के भाव से निर्जरा हो रही है – वह स्वच्छन्दी है। पर्याय में चाहे जैसा विकार हो तो भी हमें क्या ? – ऐसा माने वह स्वच्छन्दता है। सच्चा मुमुक्षु ऐसी स्वच्छन्दता का सेवन नहीं करता। सच्चा मुमुक्षु पर्याय में विकार हो उसे अपना अपराध समझता है – ज्ञान में उसे बराबर जानता है। वह पाप से अनभिज्ञ नहीं रहता, उसका हृदय करुणा और वैराग्य से ओतप्रोत होता है।

प्रश्न : एक ओर देह को भगवान आत्मा का देवालय कहा जाता है; दूसरी ओर उसे मृतक कलेवर कहते हैं तो सही है क्या ?

उत्तर : देह तो मृतक कलेवर ही है, यही सत्य है; पर भगवान आत्मा की महिमा बताते हुए देह में देवालय का उपचार करके भी देह की महिमा की जाती है।

प्रश्न : द्रव्यपरमाणु और भावपरमाणु के ध्यान से केवलज्ञान होता है। इसका क्या अर्थ है ?

उत्तर : द्रव्यपरमाणु अर्थात् आत्मद्रव्य और भावपरमाणु अर्थात् शुद्ध निर्मलपर्याय। आत्मद्रव्य के ध्यान से शुद्धपर्याय और मोक्ष होता है।

समाचार दर्शन -

मुमुक्षु गगन का एक और नक्षत्र खिरा

टोडरमल स्मारक में श्रद्धांजलि समर्पित

मध्यप्रदेश के एक साधारण परिवार में जन्मे असाधारण विद्वान **डॉ. उत्तमचंदजी जैन** का दिनांक 30 जून, 2018 को छिन्दवाड़ा में शान्त परिणामोंपूर्वक देहविलय हो गया। उनका अवसान मुमुक्षु समाज की अपूरणीय क्षति है।

अंग्रेजी में एम.ए. एवं बी.एड. का अध्ययन करके जून 1969 में मध्यप्रदेश में सरकारी शिक्षक के रूप में अपनी सेवाएं प्रारम्भ करके प्राचार्य पद तक पहुंचकर सन् 2006 में सेवानिवृत्त हुये।

भोपाल में झिरनों के मंदिर के पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव के अवसर पर सन् 1963 में पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के प्रवचन सुनने का प्रथम योग मिला। समझ में कुछ नहीं आया; परन्तु जिज्ञासा जरूर खड़ी हो गयी और फलस्वरूप सोनगढ गये। प्रथम बार ही सोनगढ में डेढ माह रुककर प्रवचनों का लाभ लिया। गुजराती प्रवचन समझ में नहीं आने पर आपने गुरुदेवश्री से हिन्दी में प्रवचन करने का आग्रह किया और गुरुदेवश्री ने प्रसन्नतापूर्वक हिन्दी में प्रवचन किये। गुरुदेवश्री के व्यक्तित्व से आप इतने प्रभावित हुए कि सोनगढ से लौटते हुए आलू-प्याज आदि जमीकंद व बैंगन आदि अभक्ष्य-भक्षण का त्याग किया।

पूज्य गुरुदेवश्री के साथ ही सोनगढ में आदरणीय रामजीभाई दोशी, पण्डित खीमचंदभाई शेठ, पण्डित लालचंदभाई मोदी, पण्डित बाबूभाई मेहता आदि अनेक वरिष्ठ विद्वानों से भी तत्त्वज्ञान का विशेष लाभ मिला।

रुचि जागृत होने पर जिनवाणी का विशेष गहराई से अध्ययन करके जैनधर्म के तलस्पर्शी विद्वान व लोकप्रिय प्रवचनकार बने। सन् 1969 से ही आप दशलक्षण महापर्व पर प्रवचनार्थ जाने लगे और धीरे-धीरे आपको मुमुक्षु समाज के वरिष्ठ विद्वानों में विशिष्ट स्थान प्राप्त हुआ।

पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट द्वारा आयोजित अनेक शिक्षण-शिविरों में, प्रशिक्षण शिविरों में, पंचकल्याणकों में, वेदी प्रतिष्ठादि कार्यक्रमों में उपस्थित होकर गरिमा बढाई। देश-विदेश का मुमुक्षु समाज आपके बुलन्द किन्तु मधुर वाणी में होने वाले प्रवचनों को सुनने के लिये सदैव लालायित रहता था।

कठिन-कठिन विषयों को सरल करके समझाने की अद्वितीय कला आपके पास थी। शास्त्रों की अनेक गाथाएं, श्लोक, छन्द व अनेक भजन आपको कण्ठस्थ थे। अनेक ग्रंथों की टीकाएं लिखकर भी आपने जिनवाणी की महती सेवा की है।

सादा जीवन उच्च विचार की प्रतिमूर्ति डॉ. उत्तमचंदजी को गृहीत मिथ्यात्व पोषक रुढियां बिलकुल नापसन्द थी और उनका वे खुलकर विरोध भी करते थे। निस्पृह वृत्ति के धारी व आत्मकल्याण को ही प्रमुखता देने वाले पण्डितजी ने अपनी गंभीर बीमारी व उसके दुष्प्रभावों के बावजूद जब तक सामर्थ्य रही प्रवचन करते रहे और बाद में अन्तिम दो दिन सर्वऔषधि आदि का त्याग करके सल्लेखनापूर्वक तत्त्वचिन्तन करते हुए शान्त परिणामों से देह छोड़ी।

आपकी स्मृति में श्री टोडरमल स्मारक भवन, जयपुर में दिनांक 1 जुलाई को प्रात: शोक सभा का आयोजन किया गया। सर्वप्रथम पण्डितजी का वीडियो प्रवचन प्रसारित किया गया। तत्पश्चात् शोक सभा प्रारम्भ हुई, जिसमें पण्डित रतनचंदजी भारिल्ल, ब्र. यशपालजी जैन, डॉ. शांतिकुमारजी पाटील, श्री परमात्मप्रकाशजी भारिल्ल, डॉ. दीपकजी जैन 'वैद्य', पण्डित पीयूषजी शास्त्री, श्री सुशीलकुमारजी गोदिका, श्री महेन्द्रजी गंगवाल, श्री महेन्द्रजी गोधा, अ.भा.जैन युवा फैडरेशन के सदस्य, महाविद्यालय के समस्त छात्र, पदाधिकारीगण, अनेक भूतपूर्व विद्यार्थी एवं सत्साहित्य सेवा समिति, बापूनगर, जनता कॉलोनी, आदर्श नगर समाज के सदस्यगण उपस्थित थे।

इस अवसर पर डॉ. शांतिकुमारजी पाटील ने डॉ. उत्तमचंदजी का परिचय दिया। साथ ही पण्डित रतनचंदजी भारिल्ल, ब्र.यशपालजी, श्री परमात्मप्रकाशजी भारिल्ल, डॉ. श्रेयांसजी, पण्डित रमेशजी शास्त्री 'दाऊ', डॉ. दीपकजी, पण्डित प्रमोदजी शास्त्री, श्रीमती कमला भारिल्ल, आदर्श नगर से श्री फूलचंदजी, जनता कॉलोनी से पण्डित राजेशजी शास्त्री आदि महानुभावों ने अपना वक्तव्य दिया। समस्त छात्रों की ओर से मयंक जैन, बण्डा ने कविता के माध्यम से अपनी भावना व्यक्त की।

दिवंगत आत्मा चतुर्गति के दु:खों से छूटकर शीघ्र ही अनंत अतीन्द्रिय आनंद को प्राप्त हो।

देशभर में बाल संस्कार शिविरों की धूम

ग्रीष्मकालीन अवकाश के अवसर पर मई एवं जून माह में पूरे देशभर में - जयपुर (राज.), नागपुर (महा.), जबलपुर (म.प्र.), भिण्ड (म.प्र.), दिल्ली, अजमेर (राज.), इन्दौर (म.प्र.), बेगमगंज-रायसेन (म.प्र.), फुटेराकलां-दमोह (म.प्र.), हिंदवाड़ी-बेलगावी (कर्नाटक), उगार-बुद्रुक (कर्नाटक), कर्रापुर (म.प्र.), सिवनी (म.प्र.), मेरठ (उ.प्र.), भिण्ड, अकलूज (महा.), बण्डा (म.प्र.), खनियांधाना (म.प्र.), हिंगोली (महा.), भितरवार-ग्वालियर (म.प्र.), अशोक नगर (म.प्र.), कैराना (उ.प्र.), भोपाल (म.प्र.), करहल (म.प्र.) आदि अनेक स्थानों पर ग्रुप शिविरों एवं बाल संस्कार शिविरों के माध्यम से अभूतपूर्व तत्त्वप्रचार हुआ। सभी स्थानों पर जिनेन्द्र पूजन, प्रवचन, बाल कक्षाएं, जिनेन्द्र भक्ति एवं सांस्कृतिक कार्यक्रमों का आयोजन हुआ। इन ग्रुप शिविरों एवं बाल संस्कार शिविरों के द्वारा हजारों बालकों ने जैनधर्म के सिद्धान्तों का ज्ञान प्राप्त किया।

अमेरिका में अपूर्व धर्मप्रभावना

(1) **शिकागो :** यहाँ दिनांक 8 से 13 जून तक डॉ. हुकमचंदजी भारिल्ल द्वारा 'मति अनुसार गति या गति अनुसार मति' विषय पर प्रवचनों का लाभ मिला। दिनांक 22 से 28 जून तक डॉ. संजीवजी गोधा द्वारा एवं दिनांक 5 से 12 जुलाई तक पण्डित विपिनजी शास्त्री द्वारा पुरुषार्थसिद्धियुपाय, निश्चयाभास, व्यवहाराभास, उभयाभास, अनेकान्त आदि विषयों पर सारगर्भित प्रवचनों का लाभ मिला।

(2) **न्यूजर्सी :** यहाँ दिनांक 14 से 20 जून तक डॉ. हुकमचंदजी भारिल्ल द्वारा 'मति अनुसार गति या गति अनुसार मति' विषय पर प्रवचनों का लाभ मिला।

(3) **फीनिक्स :** यहाँ दिनांक 24 से 27 मई तक डॉ. संजीवकुमारजी गोधा जयपुर द्वारा गुणस्थान एवं चार अनुयोग विषय पर मार्मिक प्रवचनों का लाभ मिला। साथ ही एक दिन णमोकार महामंत्र मंडल विधान का भी आयोजन किया गया।

(4) **लॉस एंजिल्स :** यहाँ दिनांक 5 से 9 जुलाई तक डॉ. हुकमचंदजी भारिल्ल द्वारा 'गति अनुसार मति या मति अनुसार गति' विषय पर प्रवचनों का लाभ मिला। दिनांक 28 से 31 मई तक डॉ.संजीवकुमारजी गोधा जयपुर द्वारा प्रात: नित्य-नियम पूजन के अतिरिक्त दोनों समय 1.30-1.30 घंटे जिनागम के विविध विषयों पर प्रवचनों का लाभ मिला।

(5) **डलास :** यहाँ दिनांक 11 से 27 जून तक अभूतपूर्व धर्मप्रभावना हुई, जिसमें डॉ. हुकमचंदजी भारिल्ल, डॉ. संजीवकुमारजी गोधा जयपुर एवं पण्डित विपिनजी शास्त्री नागपुर के मार्मिक प्रवचनों का लाभ मिला। दिनांक 21 से 27 जून तक डॉ. भारिल्ल द्वारा रहस्यपूर्ण चिट्ठी पर प्रवचन हुये। दिनांक 16 से 18 जून तक श्रुतपंचमी पर्व के अवसर पर दोनों युवा विद्वानों द्वारा शिविर एवं पंचपरमेष्ठी मंडल विधान का भव्य आयोजन हुआ। पण्डित विपिनजी शास्त्री नागपुर द्वारा आरोग्य-बोधि-समाधि लाभ विषय पर मार्मिक प्रवचन एवं डॉ. संजीवजी गोधा जयपुर द्वारा विविध विषयों पर प्रवचनों का लाभ मिला। दिनांक 18 जून को जिनेन्द्र-भक्ति एवं सायंकाल संजीवजी के प्रासंगिक विषय पर प्रवचन का लाभ मिला।

(6) **राले-नॉर्थ कैरोलिना :** यहाँ दिनांक 8 से 14 जून तक डॉ. संजीवजी गोधा द्वारा निश्चय-व्यवहार नय के भेद-प्रभेद एवं तत्त्वार्थसूत्र के द्वितीय अध्याय पर प्रवचनों का लाभ मिला। साथ ही एक दिन सीनियर सिटिजन ग्रुप में तथा एक दिन हिन्दी भाषी ग्रुप में आपका विशेष व्याख्यान हुआ। दिनांक 24 से 27 जून तक पण्डित विपिनजी शास्त्री नागपुर द्वारा विभिन्न विषयों पर सारगर्भित प्रवचनों का लाभ मिला।

(7) **क्लीवलैण्ड :** यहाँ दिनांक 18 से 23 जून तक पण्डित विपिनजी शास्त्री नागपुर द्वारा सम्यग्दर्शन-प्राप्ति के उपाय, अनेकान्त-स्याद्वाद आदि विषयों पर मार्मिक प्रवचन हुये।

शिकागो में अतिविशिष्ट सेवा अवार्ड से –

डॉ. संजीव गोधा का सम्मान

शिकागो : विश्व में अहिंसा और अनेकान्त जैसे जैन सिद्धांतों के प्रचार-प्रसार के लिये युवा विद्वान डॉ. संजीवकुमार गोधा को शिकागो में अतिविशिष्ट सेवा अवार्ड से सम्मानित किया गया।

यह सम्मान जैन सेन्टर ऑफ मेट्रोपोलिटन, शिकागो की ओर से जैन मन्दिर के 25वें वार्षिकोत्सव पर विश्व प्रसिद्ध दिगम्बर व श्वेताम्बर धर्मगुरुओं के सान्निध्य में दिया गया। ज्ञातव्य है कि दिनांक 22 जून से 1 जुलाई तक चले इस आयोजन में डॉ. गोधा ने दिगम्बर धर्म का प्रतिनिधित्व किया, जहाँ हजारों लोगों की उपस्थिति में आपके मार्मिक व्याख्यान भी हुये। महोत्सव में एक दिन भट्टारक चारुकीर्तिजी एवं डॉ. गोधा के सान्निध्य में पवैयाजी द्वारा लिखित 64 ऋद्धि विधान का आयोजन भी हुआ। संपूर्ण आयोजन में लगभग 2500 लोगों ने धर्मलाभ लिया।

श्री टोडरमल दिगम्बर जैन सिद्धांत महाविद्यालय की –

साप्ताहिक गोष्ठी संपन्न

जयपुर (राज.) : यहाँ टोडरमल स्मारक भवन में टोडरमल महाविद्यालय के विद्यार्थियों की वाग्पटुता हेतु साप्ताहिक गोष्ठियों का आयोजन किया जाता है। इसी क्रम में इस सत्र की प्रथम गोष्ठी रविवार, दिनांक 8 जुलाई को **'देव-शास्त्र-गुरु'** विषय पर आयोजित हुई।

इस अवसर पर सत्र के प्रारम्भ में गोष्ठी की उद्घाटन सभा हुई, जिसमें पण्डित रतनचंदजी भारिल्ल, ब्र.यशपालजी जैन, डॉ. शांतिकुमारजी पाटील, श्री परमात्मप्रकाशजी भारिल्ल, पण्डित पीयूषजी शास्त्री, पण्डित संजीवजी खड़ैरी, श्री अनेकान्तजी भारिल्ल, श्री कैलाशचंदजी सेठी, श्रीमती कमला भारिल्ल आदि महानुभाव उपस्थित थे।

गोष्ठी के अध्यक्ष के रूप में श्रीमती कमला भारिल्ल एवं निर्णायक के रूप में पण्डित संजीवजी शास्त्री, खड़ैरी उपस्थित थे। श्रेष्ठ वक्ता के रूप में अनिमेष भारिल्ल, राघौगढ (उपाध्याय वरिष्ठ) एवं सहज जैन, पिड़ावा (शास्त्री द्वितीय वर्ष) रहे।

गोष्ठी का मंगलाचरण संदेश जैन, दिल्ली (उपाध्याय कनिष्ठ) ने एवं संचालन पीयूष जैन, टडा व सपन जैन, सागर ने किया। आभार प्रदर्शन जिनकुमारजी शास्त्री ने किया।

श्रुतपंचमी पर्व मनाया

(1) जयपुर (राज.) : यहाँ श्री टोडरमल स्मारक भवन में दिनांक 18 जून को प्रात: वीतराग-विज्ञान महिला मंडल एवं अन्य साधर्मियों द्वारा शास्त्रों को लेकर जुलूस निकाला गया। तत्पश्चात् प्रक्षाल व श्रुतपंचमी पूजन का आयोजन हुआ। इस अवसर पर पण्डित मनोजकुमारजी मुजफ्फरनगर द्वारा प्रवचन का लाभ मिला। साथ ही डॉ. हुकमचंदजी भारिल्ल का श्रुतपंचमी पर विशेष सी.डी प्रवचन भी हुआ। **– जिनकुमार शास्त्री**

(2) जयपुर (राज.) : यहाँ आदर्श नगर स्थित मुल्तान दिगम्बर जैन मंदिर में डॉ. दीपकजी जैन 'वैद्य' द्वारा श्रुतपंचमी के अवसर पर सूत्रपाहुड के आधार पर श्रुत के स्वाध्याय की महत्ता व आवश्यकता समझायी गयी। प्रवचन के पश्चात् मंदिर परिसर में जिनवाणी शोभायात्रा भी निकाली गई।

(3) दिल्ली : यहाँ विश्वास नगर स्थित दिगम्बर जैन मंदिर में श्रुतपंचमी के अवसर पर विशेष गोष्ठी का आयोजन किया गया। गोष्ठी के अध्यक्ष एवं मुख्य वक्ता डॉ. वीरसागरजी शास्त्री दिल्ली थे। इस अवसर पर पण्डित संयमजी शास्त्री, पण्डित अमनजी शास्त्री, पण्डित चर्चितजी शास्त्री, पण्डित ऋषभजी शास्त्री, पण्डित नितिनजी शास्त्री, पण्डित ऋषभजी शास्त्री, वाणी जैन आदि वक्ताओं ने अपना वक्तव्य प्रस्तुत किया।

ब्रैम्पटन (कनाडा) में शिविर संपन्न

यहाँ दिनांक 29 जून से 4 जुलाई 2018 तक जैन अध्यात्म अकेडमी ऑफ नॉर्थ अमेरिका द्वारा आयोजित 18वाँ आध्यात्मिक शिक्षण शिविर अनेक उपलब्धियों के साथ संपन्न हुआ।

इस अवसर पर डॉ. हुकमचंदजी भारिल्ल के स्वरचित नियमसार विधान की जयमाला पर मार्मिक प्रवचनों का लाभ मिला। साथ ही प्रतिदिन डॉ. संजीवकुमारजी गोधा जयपुर द्वारा समयसार, पण्डित विपिनजी शास्त्री मुम्बई द्वारा पुरुषार्थ से मोक्षप्राप्ति, पण्डित विपिनजी शास्त्री नागपुर द्वारा सर्वज्ञ सिद्धि विषय पर सारगर्भित प्रवचनों का लाभ मिला।

दिनांक 30 जून को दिवंगत विद्वान डॉ. उत्तमचंदजी जैन सिवनीवालों की समृति में शोक सभा आयोजित हुई, जिसमें डॉ. भारिल्ल सहित सभी विद्वानों के उद्बोधन हुये। इस प्रसंग पर **JAANA** के डायरेक्टर श्री अतुलजी खारा सहित नॉर्थ अमेरिका से पधारे हुये समस्त मुमुक्षुओं ने उनका उपकार स्मरण किया।

… और तत्त्वनिर्णय न करने में किसी कर्म का दोष है नहीं, तेरा ही दोष है; परन्तु तू स्वयं तो महन्त रहना चाहता है और अपना दोष कर्मादिक को लगाता है, सो जिनआज्ञा माने तो ऐसी अनीति सम्भव नहीं है। **– मोक्षमार्गप्रकाशक, पृष्ठ 311**

तीर्थधाम ढाईद्वीप जिनायतन में विराजमान होने वाली विश्व की सबसे बड़ी स्फटिक मणि की श्री सीमंधर भगवान की प्रतिमाजी

R.N.I. No. 38278/83 ***Postal Regd. No. JaipurCity/421/2018-20***

तीर्थधाम ढाईद्वीप जिनायतन में सी–ब्लॉक के 1 BHK के फ्लेट पूर्ण

सम्पादक :
डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल
शास्त्री, न्यायतीर्थ, साहित्यरत्न, एम.ए., पीएच. डी
सह–सम्पादक :
डॉ. संजीवकुमार गोधा
एम.ए.द्वय, नेट, एम. फिल (जैनदर्शन), पीएच.डी.
प्रकाशक एवं मुद्रक :
ब्र. यशपाल जैन, एम. ए.
द्वारा पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट के लिये
जयपुर प्रिंटर्स प्रा.लि., जयपुर से
मुद्रित एवं प्रकाशित।

If undelivered please return to -- **Pandit Todarmal Smarak Trust , A-4, Bapu Nagar, Jaipur - 302015**